फिर जिंदा कैसे

रमेश पोखरियाल

हिन्दी ADDA

फिर जिंदा कैसे

https://www.hindiadda.com/phir-jinda-kaise/

बस पहाड़ी ढलानों और चढ़ाइयों पर ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलती हुई हिचकोले लेती तो सुनील का कलेजा मुँह को आ गया। खिड़की से सीधे नीचे देखो तो दो पहाड़ियों के बीच सर्पाकार बहती नदी दिखाई देती। सड़क इतनी सँकरी थी कि कई जगह लगता जैसे बस का एक पहिया ही सड़क से बाहर है। ड्राइवर की थोड़ी सी गलती से बस सीधे गहरी खाई में लुढ़कते हुए नदी में पहुँच जाती, यह खयाल मन में आते ही सुनील ने भय से आँखें बंद कर लीं।

चक्करदार रास्तों पर चलते उसका स्वयं का सिर भी घूमने लगा था। मन ही मन सुनील अपने निर्णय को कोस रहा था। बिना कुछ सोचे-समझे इस अनजाने-अनचाहे से स्थान पर आने को कैसे तैयार हो गया था वह? मन करता बीच में ही कहीं बस से उतर कर वापसी की गाड़ी पकड़ ले लेकिन पता नहीं अब इस वक्त वापसी के लिए कोई वाहन मिलेगा भी या नहीं।

बस इस समय तेज आवाज करती चढ़ाई पर चढ़े जा रही थी। पूरे दो सौ किलोमीटर दूर थी यह जगह उसके शहर से। शहरों में जहाँ दो सौ किमी की दूरी तय करने में चार-पाँच घंटे ही लगते थे वहीं पहाड़ों के चक्करदार रास्तों पर इसी दूरी को तय करने में सात से आठ घंटे लग जाते और फिर बस चल भी सिटी बस की तरह रही थी। किसी भी मोड़ पर सवारी हाथ देती और ड्राइवर गाड़ी रोक लेता। शहरों की भाँति यहाँ थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद तो वाहन उपलब्ध होता नहीं था। यहाँ तो एक बस चली जाए तो दूसरी के लिए घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ती है। ऐसे में यात्री उस समय उपलब्ध बस को छोड़ना पसंद न करते। एक समय तो ऐसा आया कि जितनी सवारी बस के अंदर थी उतनी ही छत पर। सुनील का डर अब और बढ़ गया। कैसे संतुलन बना पा रहा होगा ड्राइवर? बस इस बार वह ठीक-ठाक पहुँच जाए तो जब तक काम समाप्त न हुआ, तब तक घर वापस आने का नाम न लेगा।

वैसे भी घर में था कौन जो उसकी राह देखता। कई वर्षों पहले उसके परदादा अपना पुश्तैनी गाँव छोड़कर रोजी की तलाश में देहरादून आ बसे थे। जब तक दादा जीवित रहे कभी-कभी ब्याह-शादियों, पूजा इत्यादि में गाँव हो आते लेकिन बाद में तो वहाँ से संपर्क ही समाप्त हो गया था। जब सुनील के पिता की मृत्यु हुई तब वह मात्र दस वर्ष का था। पिता सरकारी नौकरी पर थे तो उनकी पेंशन से माँ घर का खर्चा चलाती रही। दो बेटियों और एक बेटे को पढ़या। दोनों बेटियों का विवाह किया। उनके परिवार के लोग भी बहुत पहले देहरादून आ चुके थे तो उन्होंने भी कभी पुश्तैनी गाँव न देखा था। सुनील को भी सिर्फ इतना ही पता था कि उसका गाँव टिहरी गढ़वाल में कहीं है। पर

गाँव का नाम उसे पता न था। पहाड़ के नाम पर अगर उसने कुछ देखा था तो वह था मसूरी।

बी.ए. करने के बाद भी जब सुनील को कहीं नौकरी न मिली तो कुछ दोस्तों के कहने पर उसने ठेकेदारी में हाथ आजमाने का प्रयास किया। और इसमें उसे छुटपुट सफलता भी मिली। पी.डब्ल्यू.डी. के ए क्लास ठेकेदार के साथ काम कर वह उसके काम किया करता। पिछले वर्ष माँ के गुजर जाने के बाद तो वह नितांत अकेला हो गया था। शहर में रहने का मन ही न करता। और ऐसे में ही जब उसे पौड़ी के सुदूरवर्ती गाँवों में सड़क बनाने का ठेका मिला तो इसे उसने अपनी जड़ों से जुड़ने का सुअवसर माना। और उसी का परिणाम था कि आज वह इस बस में बैठा था।

सुबह आठ बजे देहरादून से निकला सुनील दो-तीन बस बदलकर शाम छह बजे अपने गंतव्य तक पहुँचा, लेकिन वहाँ का नयनाभिराम दृश्य देख वह लंबी राह की सारी थकान भूल गया। दुग्धवल हिमाच्छादित चोटियाँ इतनी निकट लगती कि उन्हें हाथ बढ़ाकर छू लिया जाय। यों तो गर्मियों का मौसम था लेकिन यहाँ की हवाओं में हल्की सी ठंडक का आभास होता था।

सुनील की पहली रात पी.डब्ल्यू.डी. के एक गेस्ट हाउस में बीती। वहाँ का चौकीदार हरिलाल बहुत ही हँसमुख इनसान था। बातों ही बातों में सुनील ने जान लिया कि हरिलाल पास ही के एक गाँव का रहने वाला है। दुधमुँही बच्ची को हरिलाल की गोद में छोड़ पत्नी स्वर्ग सिधर गई। आज वही बच्ची अट्ठारह वर्ष की हो चुकी है।

'घर पहुँचने में थोड़ी भी देर हो जाएगी तो बहुत डाँट पिलाएगी मुझे।' हरिलाल मुस्करा कर बोला। उसके हाव-भाव से ऐसा लग रहा था जैसे उसकी बेटी उसके सामने ही खड़ी हो।

'कितने दिन का काम है बेटा तुम्हारा यहाँ।' हरिलाल ने सुनील से पूछा।

'बहुत दिनों का चाचा। सड़क बननी है मोटर अड्डे से आगे।। गाड़ी जाया करेगी उस पर। उसे बनने में तो बहुत दिन लगेंगे।'

'इतने दिन तो बेटा इस गेस्ट हाउस में रह न पाओगे।'

'नहीं चाचा। बस दो चार दिन रहूँगा, फिर शहर जाकर अपना सामन ले आऊँगा। तब तक आप ही मेरे लिए कमरा ढूँढ़ दीजिए और कहीं खाने-पीने का भी इंतजाम कर दीजिए।'

और हरिलाल ने ठीक वैसा ही किया जैसा सुनील ने कहा था। घर से लौटने पर सुनील ने पाया कि हरिलाल ने अपने ही घर में उसके लिए एक कमरे का इंतजाम कर दिया है।

'बेटा गरीब की झोपड़ी है। यहीं रह लो। गाँव में लोग किराये पर घर तो देते नहीं तो मैंने सोचा हम तो दो ही प्राणी है। कितनी जगह चाहिए हमें।'

और उस दिन से सुनील उस सहृदय इनसान के घर पर रहने लगा। और यहीं उसकी मुलाकात हुई बिंदिया से। बिंदिया, हरिलाल की बेटी। जैसा नाम वैसा ही बिंदी की तरह गोल मुँह। पहाड़ी सेब की सी लालिमा उसके गालों पर बिखरी थी। अल्हड़ पहाड़ी झरने की तरह इठलाती खिलखिलाती बिंदिया जब तब उसके कमरे में चली आती। न कोई लज्जा न संकोच। जैसी स्वयं निश्च्छल थी वैसा ही औरों को भी समझती।

हरिलाल तो सुबह नाश्ता कर चार रोटी-पोटली में बाँध निकल जाता गेस्ट हाउस की ओर। यों तो सड़क के आखिरी छोर पर स्थित इस गेस्ट हाउस में लोगों की आवाजाही कम ही थी लेकिन ड्यूटी तो ड्यूटी थी।

सुनील भी सुबह ही साइट पर चला जाता। देहरादून से आते हुए सुनील अपने साथ ढेर सारे रस-बिस्किट लेता आया था। सुबह-सुबह हरिलाल उसे एक स्टील का गिलास भर कर चाय दे जाता। उसी में भिगोकर दो रस खा सुनील का नाश्ता हो जाता।

यों तो सुनील अपने साथ एक स्टोव भी ले आया था लेकिन खाना बनाना तो उसे आता ही न था।

झिझक के मारे हरिलाल को भी ये बात बता न पाया। दो-तीन दिन यूँ ही आधे पेट खाना खाए बीत गए। दिनभर का थका-माँदा सुनील शाम को घर पहुँचते ही अपने कमरे में पड़े खटोलेनुमा चारपाई पर धँस जाता।

यह चारपाई भी उसे हरिलाल ने ही दी थी। नारियल के रस्सों से बुनी यह चारपाई, चारपाई कम झूला अधिक लगती।

ऐसे ही एक रोज रात को सुनील अपनी खटिया पर पड़ा था। आज दिन में उसने वहीं साइट पर अन्य मजदूरों द्वारा बनाया गया दाल-भात खा लिया था। तीन चार दिन बाद अन्न नसीब होने पर उसे अपार तृप्ति का एहसास हो रहा था। आज तो उसकी रस-बिस्कुट खाने की भी इच्छा नहीं थी।

'बस एक गिलास चाय पीने को मिल जाय तो कितना अच्छा हो।' यही सोचता वह बिस्तर पर पड़ा रहा।

और तभी देवदूत की मानिंद बिंदिया साँकल को जोर से खड़काती वहाँ प्रकट हो गई। साँकल खड़काना भी सुनील ने ही उसे सिखाया था वरना वह तो जब-तब तूफान की तरह सिधी अंदर घुसी चली आती।

'बाबूजी ने पूछा तुम खाना बना रहे हो क्या?' एक हाथ से अपने घाघरे की चुन्नट को हिलाते हुए उसने पूछा।

'नहीं।'

'तो खा क्या रहे हो?'

'कुछ नहीं।'

'तो फिर जिंदा कैसे हो?' और उसकी बड़ी-बड़ी आँखें आश्चर्य से और बड़ी हो आईं 'मुझे तो सुबह-सुबह पेट भर दाल-भात खाने को न मिले तो मैं तो मर ही जाऊँ।' सुनील को चुप देख उसने अपनी बात सुनाना आरंभ किया।

'बाबूजी तो दिन में रोटी खाते हैं, लेकिन मैं तो अपने लिए सुबह ही दाल-भात बना लेती हूँ।' सुनील चुप्प था और बिंदिया पटर-पटर बोले जा रही थी।

'बिंदिया...' तभी हरिलाल की आवाज आई।

'अरे बाप रे, बाबूजी बुला रहे हैं। मैं तो यहाँ आकर बातों में ही लग गई।' और उसने अपने ही सिर पर एक चपत मारी और इसी कोशिश में उसके सिर पर बँधा स्कार्फ जमीन पर आ गिरा। उसे उठाते हुए उसकी करीने से गुँथी दोनों चोटियाँ भी जमीन से लग गई। चोटियों के साथ गुँथी लाल रंग की परांदियाँ भी मिट्टी गोबर लिपे उस फर्श पर लोट गई। स्कार्फ विहीन उसका चेहरा देख सुनील की आँखें उस पर टिकी रह गईं।

और उस दिन के बाद सुनील की खाने-पीने की समस्या का भी समाधान हो गया। और साथ ही सुबह का आरंभ और दिन का अंत बिंदिया से ही होने लगा।

उछलती कूदती बिंदिया उसके साइट पर जाने से पूर्व चार रोटी और ढेर सारी सब्जी उसके सामने रख जाती।

'ये क्या है?'

'कल्यो; (नाश्ता)'

'इतना सारा!' सुनील को नाश्ते की मात्रा का आश्चर्य हुआ।

'ज्यादा कहाँ है जरा सा तो है। यहाँ तो लोग ऐसे ही खाते हैं। अच्छा ये तो बताओ चार-पाँच दिन सुबह क्या खाया?'

'ये।' और सुनील ने रस का पैकेट उसके सामने रख दिया।

'अब तू ले जा इसे।' बिंदिया को उस पैकेट की ओर ललचाई नजरों से देखते हुए देख सुनील ने उसे बिंदिया के ही हवाले कर दिया। वह तो उसे बाद में पता चला कि बिंदिया उस पैकेट को एक ही दिन में उदरस्थ कर गई थी।

और धीरे-धीरे बिंदिया सुनील की आदत और उसके बाद जिंदगी बनती गई। और एक दिन उसने बिंदिया से विवाह का प्रस्ताव हरिलाल के सामने रख दिया।

सुनकर हरिलाल ऐसे चौंका जैसे जलता कोयला छू लिया हो।

'साहब कहाँ तुम और कहाँ हम। ऐसा कैसे हो सकता है।'

'क्यों? क्या तुम इनसान नहीं?'

'साब वो तो ठीक है लेकिन हमारी जात।'

'मैं नहीं मानता जात पाँत को।' सुनील का स्वर दृढ़ था।

'लेकिन गाँव वाले क्या कहेंगे। कैसे रह पाऊँगा मैं इस विवाह के बाद गाँव में।' हरिलाल को अपनी बेटी के भविष्य से अधिक इस बात की चिंता थी कि लोग क्या कहेंगे।

'क्या मैं आपको अच्छा नहीं लगता। क्या मैं आपकी बेटी के लिए सुयोग्य वर नहीं हूँ?'

'ऐसी बात नहीं बेटा। तुम तो बहुत लायक हो। मेरी बेटी बहुत खुश रहेगी तुम्हारे साथ। लेकिन...।'

'लेकिन क्या? गाँव वालों के लिए तुम अपनी बेटी की खुशी क्यों छीन रहे हो?'

'और तुम्हारे घर वाले?'

'मेरे माता-पिता इस दुनिया में नहीं। बस दो शादीशुदा बहनें हैं। वह मेरी बात नहीं टालेंगी।' सुनील ने आत्मविश्वास से कहा।

कई सारी शंकाओं, आशंकाओं के बीच झूलते हरिलाल ने आखिर हाँ कर ही दी। लेकिन उस दिन के बाद बिंदिया में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया। जरा सी बात पर हँसती-खिलखिलाती बिंदिया ने लज्जा की चादर ओढ़ ली। सुनील के समक्ष भी वह कम ही आती।

सुनील से स्वतः ही उसने एक दूरी बना ली थी। जैसे ही उसे सुनील से अपने रिश्ते की बात का पता चला उसे लगा जैसे कि अचानक ही बहुत बड़ी हो गई हो। उसने देखा था कैसे उसकी बहुत सी सहेलियाँ विवाह के बाद अपने माता-पिता का घर छोड़कर किसी अनजान अपरिचित व्यक्ति के साथ चली गई थी। और उसके बाद जब भी गाँव वापस आई तो मेहमान की तरह।

'तो क्या उसे भी अपने पिता को छोड़कर जाना होगा? लेकिन उसके पिता तो उसके जाने के बाद एकदम अकेले हो जाएँगे। कौन करेगा उनकी देखभाल? कौन पकाएगा उनका खाना? उन्हीं घुमड़ते हुए प्रश्नों ने उसे उदास कर दिया।'

और यही सवाल एक दिन उसने अपने पिता से किया।

'पिताजी क्या तुम्हें अकेले छोड़कर जाना पड़ेगा मुझे यहाँ से?'

हरिलाल ने चौंक कर बेटी की ओर देखा। सहमा हुआ चेहरा। हैरान-परेशान हिरनी के समान डरी हुई आँखें। तो क्या यह अपने विवाह से खुश नहीं है। या मुझे छोड़कर जाने की कल्पना से डरती है।

'तू कहाँ जा रही है बिंदिया? यहीं तो रहेगी मेरे पास।' हरिलाल का स्वर कँपकँपा उठा।

लेकिन पिताजी शादी के बाद तो सभी चले जाते हैं अपना गाँव छोड़कर। सविता भी गई, निर्मला भी, लक्ष्मी भी और भी बहुत सी लड़कियाँ।

'लेकिन तेरे पति को तो यहीं रहना है यहीं काम करना है फिर तू कहाँ जा रही है?'

'जब उनका काम खत्म हो जाएगा, फिर तो जाना पड़ेगा।' और कहते-कहते उसका गला भर्रा गया। आँखें डबडबा आईं, आँसुओं को छिपाने के लिए उसने सिर नीचे कर लिया।

बेटी के इस प्रश्न ने हरिलाल को सोचने पर मजबूर कर दिया। ठीक ही तो कह रही है बिंदिया। सुनील कौन सा सदा के लिए यहाँ रहने वाला है। बस पाँच-छह माह और, और फिर उसका काम समाप्त। तब तो बिंदिया को जाना ही होगा यहाँ से और वह रह जाएगा निपट अकेला। यह सोचकर उसका मन काँप उठा। कैसे भेजेगा वह अपने कलेजे के टुकड़े को इतनी दूर। उस अनजान से शहर में जिसे उसने कभी देखा ही नहीं। इस अपरिचित लड़के के बारे में भी तो कुछ नहीं जानता वह। जो उसने कहा उसी पर यकीन कर लिया।

लेकिन उसकी सभी आशंकाएँ निर्मूल साबित हुईं जब विवाह के अवसर पर सुनील की दोनों बहनों से मुलाकात हुई।

'हमारे भाई की पसंद तो बहुत ही अच्छी है। और उसकी पसंद, उसकी खुशी ही हमारे लिए खुशी है। वैसे भी अभागा है बिचारा। न माँ न बाप।' कहते हुए बड़ी बहन की आँखें नम हो आईं।

और बिना किसी झाम-ताम के ठेठ पहाड़ी रीति-रिवाजों के साथ बिंदिया का विवाह सुनील के साथ हो गया। विवाह के दिन चेहरे पर हल्दी लगने के बाद बिंदिया के सौंदर्य में चौंगुणित वृद्धि हो गई। उसका चेहरा अपूर्व आभा से चमक रहा था।

सुनील ने उसे देखा तो देखता ही रह गया। थोड़े से ही श्रृंगार से चेहरा इतना चमक उठा है। शहर में भी शहरी लड़कियों की तरह बनठन के रही तो कितनी सुंदर लगेगी और इसकी कल्पना मात्र से सुनील प्रफुल्लित हो उठा।

विवाह के कुछ समय बाद ही सभी मेहमान अपने अपने घरों को चले गए तो जीवन पुराने ढर्रे पर आ गया।

'मैं सोच रहा हूँ कि इन बकरियों को बेच दूँ अब। मेरे पीछे कौन देखभाल करेगा इनकी।' एक दिन हरिलाल ने कहा तो बिंदिया का अंतर्मन कराह उठा।

क्या इतनी पराई हो गई है वह अपने पिता के लिए कि उनकी चार बकरियों को भी नहीं पाल सकती। कुछ कहना चाहती थी लेकिन सुनील बीच में ही बोल पड़ा।

'कैसी बातें कर रहे हैं आप? बिंदिया जैसे पहले घर सँभालती थी, वैसे ही सँभालेगी। अब तो हम तीनों का एक परिवार हो गया है। आपने मुझे और बिंदिया को अलग कैसे समझ लिया? और वैसे भी वह दिन भर करेगी क्या? हम दोनों तो दिन भर बाहर रहेंगे।'

पति की बात सुन बिंदिया का मन श्रद्धा से नत हो उठा। इन बकरियों में तो उसकी जान बसती थी। छोटे-छोटे मेमने थे, तब से पाला था उसने उन्हें। अब उनको बेचे जाने की बात से काँप उठा था उसका मन।

विवाह के एक माह पश्चात ही सुनील को उसी क्षेत्र में सड़क बनाने का बड़ा काम मिल गया। इस काम के मिलने से सुनील बिंदिया को अपने लिए भाग्यशाली भी समझने लगा। अब उसने वहीं रहकर और अधिक काम बढ़ाने की सोची।

इसी तरह सात-आठ वर्ष पलक झपकते बीत गए। इस बीच बिंदिया तीन बच्चों की माँ बन गई और सुनील 'सी' क्लास से 'ए' क्लास का ठेकेदार। लक्ष्मी की तो उस पर अति कृपा हो रही थी। हरिलाल से भी उसने नौकरी छुड़वा दी थी। कच्चे मकान के स्थान पर छह-सात कमरों का पक्का मकान बन चुका था। गाँव से दूर सड़क पर जब सुनील अपनी बुलेट में जाता तो चारों ओर उसकी आवाज गूँजती और बच्चे तो बच्चे बड़े भी उसकी मोटर साइकिल देखने खड़े हो जाते। सुनील का काम अब कई स्थानों पर फैलने लगा था। अब उसने देहरादून स्थित अपना पैतृक आवास बेच कर वहीं जमीन भी खरीद ली थी और अब मकान बनाने की तैयारी कर रहा था। अब वह चाहता था कि उसका परिवार देहरादून में ही रहे और उसके बच्चे वहीं पर पढ़ाई करें।

मकान बन कर तैयार हुआ तो सुनील परिवार को देहरादून ले आया। हरिलाल ने आने से इनकार कर दिया। सारी जिंदगी गाँव में गुजारकर अब बेटी के घर पर आना उसके पुरातनपंथी मन ने गवारा न किया। बिंदिया को पहली बार लगा कि उसका विवाह हो चुका है। और उसे पितृगृह का त्याग करना है तो उधर हरिलाल ने भी बेटी की विदाई की पीड़ा अब सहन की।

बिंदिया शहर आ गई। उसके गाँव के मुकाबले बहुत बड़ा शहर। उसके गाँव जैसे तो कई गाँव समा जाएँ इसमें। यों तो वह पति के साथ पहले भी देहरादून आई थी, लेकिन दो-तीन से अधिक के लिए नहीं। और रही भी पुराने आवास में थी। अब ये नया घर तो पुराने की तुलना में बहुत बड़ा भी था और सुविधाजनक भी।

इस घर को समझने में ही बिंदिया और बच्चों को कई दिन लग गए। बिंदिया को आश्चर्य होता कि कैसे बिजली का एक बटन दबाते ही एक टंकी में रखा पानी गरम हो जाता है। और भी कई सारी बातें उसे आश्चर्यजनक लगतीं।

यहाँ आकर बिंदिया अपनी गृहस्थी में व्यस्त हो गई और सुनील अपने काम में। लेकिन धीरे-धीरे सुनील बदलने लगा था। उसकी पैसा कमाने की हवस तीव्र से भी तीव्रतम होती गई। और इसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार था। देर रात तक घर आता। थोड़ी बहुत शराब भी पीने लगा था सुनील। बात-बात पर बिंदिया को झिड़क भी देता।

शहर आने के कुछ ही समय बाद बिंदिया ने देखा कि घर के सामने बहुत सी जगह खाली पड़ी है। थोड़ी सी मेहनत कर उसने वहाँ सब्जी लगा दी। बहुत दिनों तक तो सुनील का ध्यान इस ओर नहीं गया। लेकिन जैसे ही बीज अंकुरित हो धरती का सीना चीर खुली हवा में प्रस्पफुटित हुए तो एक सुबह सुनील का ध्यान उस ओर चला गया।

'ये क्या बोया है यहाँ?'

'घर से थोड़े से सब्जी के बीज ले आई थी। वहीं बोए हैं।' बिंदिया ने उत्साह से बताया। जानती थी सुनील खुश होगा, लेकिन ये क्या सुनील का चेहरा तो गुस्से से लाल भभूका हो उठा।

'रही ना तू पूरी गँवार की गँवार। घर के आगे सब्जी बोई जाती है क्या?'

सुनील का चेहरा देख बिंदिया सहम गई। आखिर क्या गलती हो गई उससे। यह उसकी समझ में न आया। गाँव में भी तो घर के आगे की जमीन पर सब्जी ही बोई थी उसने। फिर यहाँ ऐसा क्या है कि ऐसा नहीं कर सकते। सुनील के झिड़कने से उसके आँसू निकल आए। वह चुपचाप सिर झुकाए खड़ी की खड़ी रह गई।

उसकी हालत देख सुनील थोड़ा सा पसीजा। स्वर को यथासंभव कोमल बनाकर उसने बताया कि यहाँ घास लगाकर लॉन बनाया जाएगा। शहरों में घर ऐसे ही होते हैं।

बिंदिया की समझ में न आया कि घास सब्जी से अच्छी कैसे हो सकती है। लेकिन यह पूछने की उसकी हिम्मत न थी।

उस दिन के बाद से बिंदिया ने कोई भी काम अपनी मर्जी से करना बंद कर दिया। घर में एक कुर्सी भी इधर से उधर खिसकानी होती तो वह सुनील से पूछती। सुनील और

अधिक झुँझलाता, उस पर बिगड़ता। बिंदिया फिर रुआँसी हो उठती। बस ऐसे ही जिंदगी चल रही थी।

जैसे-जैसे सुनील का काम बढ़ रहा था, वैसे-वैसे उसके मित्रों की संख्या भी बढ़ रही थी। घर में आए दिन पर्टियाँ होती। शराब की महफिल सजती, हो हल्ला होता। दबी जुबान में बिंदिया बच्चों के बड़े होने के कारण इसका विरोध करती तो उसे गँवार कहा जाता, अज्ञानी कहा जाता।

'बिजनेस में ऐसा ही होता है। तू क्या जाने कि कितनी मेहनत करनी पड़ती है पैसा कमाने के लिए। और फिर तुम्हारे और बच्चों के लिए ही तो कर रहा हूँ सब कुछ।'

पैसा कमाने के लिए दोस्तों को शराब की पार्टी क्यों देनी पड़ती है यह बिंदिया की समझ में कभी न आया।

बच्चे बड़े हो रहे थे। दिन प्रतिदिन घर में आने वाला पैसा भी बढ़ रहा था। सुनील ने कई जगह जमीन खरीद ली थी। पर जिस अनुपात में पैसा और सुख सुविधाएँ बढ़ रही थी, उसी अनुपात में बिंदिया की घुटन भी बढ़ रही थी। उसे लग रहा था कि उसने अपना पति खो दिया। सुनील देर रात नशे में धुत्त हो घर पहुँचता। आरंभ में एक दो बार बिंदिया ने विरोध भी किया लेकिन व्यर्थ की गाली गलौज और मारपीट के सिवा कुछ हासिल न हुआ। बच्चों पर उनके झगड़े का विपरीत असर न पड़े यह सोच कर बिंदिया ने चुप रहने का रास्ता उचित समझा। उसके जीवन में अब कोई सुख नहीं था। कहने को तो बड़ा घर, ऐशोआराम की सारी चीजें लेकिन बिंदिया को तब भी गाँव बहुत याद आता। कितने सुखी थे वह वहाँ पर। कितना स्नेह था उन दोनों के बीच। बच्चे भी खुश रहते। यहाँ तो बिंदिया की स्थिति सोने के पिंजरे में कैद चिड़िया की भाँति हो गई थी। कहाँ तो गाँव में वह पहाड़ी हिरनी की भाँति स्वच्छंद विचरण करती थी और कहाँ शहर की ये कैद। वो तो इस कैद में भी खुश रह लेती लेकिन पति! उसका सहयोग तो मिले।

समय बीत रहा था। बिंदिया दिन प्रतिदिनि हड्डियों का ढाँचा बनती जा रही थी। सुनील अपने काम में व्यस्त था और उनकी बड़ी बेटी कॉलेज जाने लगी थी। उससे छोटी बारहवीं में थी और सबसे छोटा बेटा दसवीं में। बेटियों का माँ से अधिक जुड़ाव था। माँ की हालत देखती तो पिता पर गुस्सा आता। माँ के लिए तरह-तरह के कपड़े, गहने, खाने-पीने की सामग्री लेकर आती लेकिन बिंदिया का तो पहनने ओढ़ने का उत्साह ही समाप्त हो चुका था। कभी-कभी उसका जी करता कि अपनी इहलीला

समाप्त कर ले। लेकिन बेटियों के लिए जीती रही। बेटे की उसे अधिक चिंता न थी। वो प्रखर बुद्धि का था और पिता की आदतें उसे बहुत पसंद न आती।

कुछ समय और बीता। चार पाँच वर्ष के अंदर-अंदर सुनील ने दोनों बेटियों का विवाह कर दिया। जिस दिन दूसरी बेटी का विवाह हुआ उस दिन बिंदिया ने अपने आप को जिम्मेदारियों से मुक्त समझा। पुत्र भी तब तक एक प्रतिष्ठित कॉलेज से इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा था।

सुनील ने बहुत चाहा था कि बेटा सिविल इंजीनियरिंग में प्रवेश ले, बाद में उसकी मदद करेगा, लेकिन पुत्र ने उनका सुझाव सिरे से नकार का सूचना प्रौद्योगिकी में प्रवेश ले लिया। सुनील को पुत्र की इस नाफरमानी से क्रोध भी आया, धक्का भी लगा लेकिन फिर वह अपनी जिंदगी में मस्त हो गया।

लेकिन बिंदिया के जीवन में अब कुछ न रहा। दोनों बेटियाँ अपने अपने घर गई। बेटा भी पढ़ाई के लिए दूसरे शहर गया। बस पति-पत्नी ही रह गए थे घर में और पति के दर्शन भी नाम मात्रा को ही होते। जब उससे मुलाकात होती तो तब तक वो इतनी पी चुका होता कि होश में न रहता।

पहले तक बेटियों की आड़ थी तो सुनील अपने मित्रों को पिलाने के लिए घर कम ही लेकर आता लेकिन अब तो ये भी नित्य की दिनचर्या में शामिल हो गया था। देर रात तक सुनील की मित्र मंडली घर में हंगामा करती रहती और साथ ही चलता अलग-अलग फरमाइशों का दौर। कभी पकौड़े तो कभी चिकन, कभी मटन और साथ निभाने के बाद भी सुनील की झिड़की। गँवार और बद्तमीज शब्द तो जैसे उसने रट लिए थे। सुनील दोस्तों के सामने पत्नी को डाँटता और वे खी-खी कर हँस देते।

'तू मर क्यों नहीं जाती। मेरा भी पीछा छूटेगा, तुझ गँवार से और तू भी मुक्ति पा जाएगी।' एक दिन नशे की पिनक में सुनील ने कहा तो बिंदिया का मन रो उठा। साथ ही उसे उसकी बात ठीक भी लगी। अब क्या उद्देश्य है उसके जीवन का? पति पर भारस्वरूप ही तो है वह और यही सब सोच एक दिन पति के जाने के कुछ ही समय पश्चात उसने नुआन गटक ली।

थोड़ी देर की छटपटाहट और फिर सब कुछ शांत। बिंदिया को लगा जैसे वह बादलों के बीच उड़ रही है और राजकुमार की सी वेशभूषा में वर्षों पहले का सुनील उसकी ओर बाँहें पसारे खड़ा है। बिंदिया का जिस्म खुशी से थरथरा उठा। आज वह प्रफुल्लित मन से अपनी उसी पुरानी दुनिया में प्रवेश कर रही थी। सब कुछ शांत था बहुत शांत।

देर रात सुनील घर लौटा तो देखा घर की बिजली तक नहीं जली है। अंधकार में नहाया हुआ घर उसे भुतहा सा लगा। दरवाजा खटखटाया लेकिन अंदर से कोई आवाज न आई। रात के ग्यारह बज चुके थे। चारों तरफ सुनसान वातावरण था।

'कहीं बिंदिया सो तो नहीं गई?' यही प्रश्न उसके मन में आया और गुस्से में भुनभुनाता सुनील घर से बाहर निकल पड़ा। वह रात उसने अपने एक दोस्त के यहाँ गुजारी। सुबह एक बार फिर वह अपने घर की ओर चल पड़ा। रात का हैंगओवर अभी भी बाकी था। एक बार फिर उसने दरवाजा खटखटाकर उसे खुलवाने का असफल प्रयास किया। हारकर उसे दरवाजा तुड़वाना ही पड़ा।

अंदर का दृश्य देख उसका सारा नशा हिरन हो गया। बिंदिया की निर्जीव देह फर्श पर पड़ी थी। मुँह से निकलता झाग ने अब सूख कर बिंदिया के मुँह पर एक सफेद लकीर सी बना दी थी।

बिंदिया की हालत देख सुनील डर गया। थोड़ी ही देर में पूरा मोहल्ला वहाँ इकट्ठा हो गया। उन्हीं में से किसी ने पुलिस को भी खबर कर दी। आनन-फानन में पुलिस भी वहाँ पहुँच गई। वह तो सुनील की पुलिसवालों से अच्छी जान पहचान थी और बिंदिया ने अपनी मौत के लिए किसी को दोषी नहीं ठहराया था तो बात आई गई हो गई।

'पिताजी आपने हमारी माँ को मार डाला। अब तो घर आने की भी इच्छा नहीं होगी।' जाते हुए बेटे ने अपनी दोनों बहनों के समक्ष सुनील के लिए ये शब्द कहे तो वह हतप्रभ रह गया। ये क्या कह रहा है ये? उसने अपने समर्थन के लिए बेटियों की ओर देखा लेकिन उन्होंने भी घृणा से मुँह फेर लिया।

यह क्या हो गया बच्चों को? क्या नहीं किया उसने उनके लिए? अच्छी पढ़ाई, अच्छा रहन-सहन, अच्छे घरों में विवाह, कभी कोई कमी न होने दी। लेकिन क्या मिला उसे ये सब करके। बच्चों की घृणा। उन तीनों की आँखों से झाँकते नफरत के भाव सुनील से सहन न हो रहे थे। इस समय उसे तीनों बच्चे कृतघ्न लग रहे थे। अच्छा होता कि इन्हें वह वहीं गाँव में गँवार बनने के लिए ही छोड़ देता।

लेकिन तभी उसे बिंदिया के साथ किया अपना व्यवहार याद आया। शहर में आकर कौन सी खुशी दे पाया वह उसे? बात-बात पर झिड़कना, गाली-गलौज करना। बस यही तो स्वभाव था उसका बिंदिया के साथ। सुनील जितना सोचता, उतना परेशान होता।

बच्चे जा चुके थे। अब सुनील उस घर में नितांत अकेला था। कमरे की चार दीवारें उसे काटने को दौड़ती। घर-घर न रहा, भुतहा निवास हो गया।

सुनील ने अपने आप को नशे में डुबो दिया। अब तो भूले से भी उसे रोकने वाला कोई न था। सुनील अब भी अपने धन और दोस्तों के गुमान में बच्चों से और दूर होता गया। दोस्तों ने भी उसे खूब इस्तेमाल किया और धीरे-धीरे सुनील सब कुछ उन पर लुटाकर अंदर से खोखला होता चला गया।

पुत्र ने इंजीनियरिंग की परीक्षा पास कर एक कंपनी में नौकरी करना उचित समझा। नौकरी पर जाने से पूर्व एक बार घर आया तो सुनील के मन की बात जुबान पर आ ही गई।

'बेटा घर का ही इतना बड़ा व्यवसाय है। इतना फैल गया है कि मुझसे सँभलता नहीं अब। क्यों करते हो किसी की नौकरी? घर का ही काम सँभालो।'

'नहीं पिताजी मुझे आपके काम में कोई दिलचस्पी नहीं।' रूखा सा जवाब देकर बेटा अपनी नौकरी पर चला गया।

जैसे-जैसे सुनील की उम्र बढ़ रही है वैसे-वैसे उसका पैसा भी समाप्त हो रहा है। साथ ही कम हो रही है दोस्तों की फौज। सुनील अब काम धम छोड़कर घर में ही पड़ा रहता है। एक लड़का है जो घर की साफ-सफाई भी कर देता है और उसे दो रोटी भी खिला देता है।

वह लड़का बताता है कि सुनील कभी-कभी चिल्लाता है कि उसने बिंदिया का खून कर दिया है। उसने मारा है उसे, हत्यारा है वह।

लोग कहते हैं सुनील अकेलेपन की व्यथा नहीं झेल पा रहा। पत्नी की असमय मौत ने उसे पागल कर दिया है। लेकिन यह तो सुनील जानता है या बिंदिया की आत्मा कि कौन सी व्यथा ने सुनील को पागल किया है।

https://www.hindiadda.com/phir-jinda-kaise/